International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(1): 11-13

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(1): 11-13
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 04-11-2016
Accepted: 05-12-2016

डॉ0 तरुण कुमार शर्मा
प्राध्यापक, संस्कृत–विभाग
अतर्रा पी0जी0 कालेज, अतर्रा
(बाँदा) उ0प्र0

Correspondence
डॉ0 तरुण कुमार शर्मा
प्राध्यापक, संस्कृत–विभाग
अतर्रा पी0जी0 कालेज, अतर्रा
(बाँदा) उ0प्र0

वाल्मीकि रामायण में प्रतिपादित सामाजिक समरुपता : एक अनुशीलन

डॉ0 तरुण कुमार शर्मा

पुरातन काल में वैदिक ऋषि के अनुसंधित्सु मन में प्रकृति की अनेकता में एकत्व का दर्शन किया, भिन्नता में एकता को आभाषित किया। अन्ततः वे इस अन्विति को प्राप्त हुए कि प्रकृति के नाना रूपों में एक ही शक्ति है, जो समग्र सृष्टि की गति को नियन्त्रित करती है।[1] उसी एक अमृत तत्त्व की उपलब्धि से आत्मतत्त्व की अनुभूति सार्थक हो जाती है और मानव सृष्टि के कण–कण में आत्मतत्त्व का दर्शन कर लेता है। भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि पुरुष श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है–चतुवर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।[2] एकाधिक वर्गों में विभक्त समाज में परस्पर मन और विचारों की विशालता, सबके साथ सहभागिता, सबके जीवन में सम्मिलित होना और सबको अपने जीवन में सम्मिलित करना–समन्वयता का यही रूप भारतीय–संस्कृति को अभिप्रेत है। अपने द्वारा अर्जित सम्पत्ति का अपने ही क्षुद्र स्वार्थ के लिए अपनी ही सुख सुविधा के लिए उपयोग अक्षम्य है, त्याग की वेदी पर स्वार्थ का परित्याग होना चाहिए जैसा कि गीता में भी प्रतिपादित किया गया है–

> यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
> भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।[3]

भारतीय–संस्कृति में विलय की अभूतपूर्व सामर्थ्य है। समग्र धर्म, समस्त जातियाँ, सम्पूर्ण सम्प्रदाय अपनी–अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखते हुए इसमें विलीन हो जाते हैं, जो अपने अनुकूल है वही दूसरे के लिए भी सुखकर है, जो अपने लिए कष्टकर प्रतिकूल है वह दूसरे के लिए भी दुःख का बनेगा। जीवन के माधुर्य की आपूर्ति इसी सन्देश में सन्निहित है।
आज भारतीय समाज में जिन देवताओं, अनुष्ठानों, तीर्थों और उत्सवों की मान्यता है, आचारों, आस्थाओं और परम्पराओं का प्रचलन है, वे आर्य एवं आर्येतर संस्कृति के मिश्रण का परिणाम है। सभी दिशाओं में बसने वाले भारतीयों की संस्कृति में आपाततः भिन्नता प्रतीत होने पर भी आन्तरिक रूप से सांस्कृतिक एकता का समन्वय है। उन सभी का धर्म एक है, भाषा मूल एक है, संस्कार एक है, संस्कृति एक है, भाव एवं विचार एक है, जहाँ तक कि जीवन के विषय में दृष्टिकोण भी एक है। जैसा कि ऋग्वेद में प्रतिपादित भी किया गया है–

> संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम।
> देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।।[4]

सच तो यह है कि जब संस्कृतियों की विशाल धाराएँ किसी एक संगम पर मिलती है, जब समाज एक परिवर्तन से गुजरता है, जब समन्वयता का संदेश शाश्वत होता है, तब कोई क्रान्तिद्रष्ट कवि जातीय महाकाव्य की रचना कर उस क्रान्ति को अमर कर देता है। रामायण ऐसी ही समन्वय प्रधान किन्तु लोकपावनी क्रान्ति की संवाहक है और वाल्मीकि उसके प्रख्यापक, महाकाव्य के गुणों से सर्वथा मण्डित होने पर भी रामायण काव्य नहीं, राष्ट्र की अन्तरात्मा का, सत्य–प्रकाश और एकता की दिव्य शक्तियों का इतिहास है, जो आदर्श के स्वरों के द्वारा भारतीय जीवन को स्नेह, समन्वयता और सौहार्द से अभिसिञ्चित करता है। भारत के मानस को एक सूत्रता में बाँधने का आदिकवि वाल्मीकि का यह प्रयास अद्भुत है, जिसमें राम की जीवन चेतना को मूल सत्य की ऐसी अभिव्यक्त के साथ प्रस्तुत किया है वे भारतीय आस्था और सम्मान के स्थाई केन्द्र बन गये हैं। राम के प्रति जन–जन के मन में तब भी आदरभाव था, जब महावीर और बुद्ध अपने शान्त उपदेशों से भारत का हृदय परिवर्तन कर रहे थे।

आदि कवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में तात्कालिक तीन प्रधान संस्कृतियों में मौखिक रूप में जीवित तीन सत्य कथाओं का अन्तर्भाव कर दिया है। यह वह युग था जब अयोध्या के राजमहलों में उच्चस्तरीय आर्यसंस्कृति का प्रसारण हो रहा था और राम उसके प्रणेता रूप में उत्तर भारत का नेतृत्व कर रहे थे। दक्षिण में राक्षसराज रावण अनार्य सभ्यता का स्वामी बन लंका के द्वीप–द्वीपान्तरों में अन्याय तथा अधर्म को महिमा मण्डित कर रहा था। किष्किन्धा के वानरराज बालि मध्यभारत में राक्षसराज रावण से मैत्री स्थापित रखने में अपनी सुरक्षा मान रहे थे, उनकी अनुकूलता प्राप्त कर महाराज रावण के प्रतिनिधि, खर, दूषण, त्रिशिरा और ताड़का जैसे भयंकर राक्षस शान्त मुनिवृत्तयों का उच्छेदन कर आर्य संस्कृति के विनाश कार्य में संलग्न थे परशुराम द्वारा इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार करने से आर्यावर्त की आर्यशक्ति भी कुण्ठित हो चुकी थी। इन विषम परिस्थितियों में देवताओं, ऋषियों और गन्धर्वों ने वन्यजाति के उत्साही, तरुण, वीर युवकों की सहायता से अनार्य संस्कृति की समाप्ति का निश्चय किया जिसका परिचय महाराज दशरथ के अश्वमेघ–यज्ञ के अवसर पर आयोजित सार्वभौमिक परिषद से प्राप्त होता है। जैसा कि वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में भी प्रतिपादित किया गया है–

सत्यसन्धस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैषिणः।
विष्णोः सहायान् बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः।।[5]

कवि की दृष्टि में व्यक्ति वैयक्तिक स्तर पर पृथक् है किन्तु मानवीय सम्बन्धों के सूत्र में बँधकर, एक दूसरे के हिताचरण में सम्पृक्त रह कर एक हैं। इस हिताचरण के उन्नयनुकूल कवि के पात्र स्वयं के व्यूह से बाहर निकल कर परार्थ की उन्मुक्तता में विचरण करते हैं, तभी तो भरत ने कहा है कि धर्मबन्धन के कारण मैं इस वध करने योग्य पापाचारिणी माँ को मार भी नहीं सकता हूँ। जैसा कि बाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड में प्रतिपादित किया गया है–

धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि तनेमां नेह मातरम्।
हन्मि तीव्रेण दण्डेन दण्डार्हा पापकारिणीम्।।[6]

वाल्मीकि की रामकथा का ही प्रभाव है कि रामायण में रामकथा में वर्णित उत्तर से दक्षिण भारत तक के भौगोलिक स्थान राम के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के साक्षी बनकर तीर्थ के रूप में श्रद्धेय हो गये। अयोध्या, जनकपुर, चित्रकूट, प्रयाग आदि नगर प्रसिद्धि पाकर दक्षिण की धार्मिक जनता की आस्था के केन्द्र हुए तथा प४चवटी, रामेश्वरम् इत्यादि नगर पवित्र धार्मिक स्थल बनकर दर्शन के लिए उत्तर की जनता को लालायित करने लगे, सांस्कृतिक आदान–प्रदान का यह उपाय अनुपम तो है ही सरल भी है। राम की इन लीला स्थलियों की पावन यात्रा धार्मिक जीवन को तृप्ति प्रदान करती है, साथ ही समन्वयत्व के आन्तरिक बन्धन को भी दृढ़ करती है।

आज भी राम हमारे राजा है और हम उनकी प्रजा, आज भी हमारे हृदय में राम के सिंहासन पर अन्य कोई सत्ताधीश नहीं बैठ सकता है। सत्ताधीश की मर्यादा है, प्राण मात्र के प्रति समदृष्टि। महर्षि वाल्मीकि ने समदर्शी राम के चरित्र को यथार्थ की भाव भूमि पर खड़ा करके मानव धर्म की स्थापना की है। वे रामायण के प्रारम्भ में ही देवर्षि नारद से जिज्ञासा करते हैं। जैसा कि रामायण में भी प्रतिपादित किया गया है –

चरित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।[7]

और देवर्षि उत्तर देते हैं –

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।[8]

चरित्र से वाल्मीकि का अभिप्राय प्रजा कल्याणपरायणता से है। कवि अपने उद्देश्य में सफल भी हैं क्योंकि उनकी काव्य दृष्टि से ही प्राणमान् होती है। मानवता के आदर्श सन्देश, समन्वयता की नैतिक शिक्षाएँ राम की जीवनानुभूति से ही स्पन्दित होती है। इस स्पन्दन से सृष्टि का कोई प्राणी अछूता नहीं है। मानवीय मूल्यों के संरक्षण में केवल मानव ही नहीं अपितु मानवेतर प्राणी भी समाहित हो गये हैं। आकाशचारी जटायु का कर्त्तव्य पालन के लिए किया गया प्राणोत्सर्ग उल्लेख्य है। वह जीवित रहते हुए नारी की अस्मिता के लिए यथासामर्थ्य प्रयास करता है। उसी से राम को अपनी प्रिया सीता के हरण की प्रथम सूचना मिलती है और जटायु को रामदर्शन से मुक्ति।[9] इसी प्रकार जटायु के अग्रज सम्पाती भी सीतान्वेषण में सहायक होकर रामकृपा से नवजीवन प्राप्त करते है।[10]

महर्षि बाल्मीकि ने भारतीयता की जीवित शक्ति नारी के विविध रूपों और शक्तियों की अवमानना कदापि नहीं की रामायण के नारी पात्र आत्मबलिदान और सहिष्णुता की साक्षात् प्रतिमा है, उनका समग्र जीवन साधना और तपश्चर्या की कठोरतम् साधना से ओत–प्रोत है। नारी के अबलात्व और कोमलतम पक्ष को राम की चैतन्यता और हृदय के विकास ने सबल कर दिया है, उनके अभिशापों को राम ने स्वयं झेलकर अपने वरदानों से उनमें अक्षय शक्ति भर दी है। पश्चाताप की अग्नि में दग्ध हुई अहिल्या का आतिथ्य सत्कार ग्रहण कर तथा भीलनी शबरी के द्वारा पूजित होकर विशाल अयोध्या साम्राज्य के भावी साम्राट राम ने उन्हें नारीत्व के उच्चतम शिखर पर प्रतिष्ठापित किया है और यह सिद्ध कर दिया कि प्रेम और भक्ति में वह शक्ति है जो उच्च–निम्न, श्रेष्ठ–अवर का भेद मिटाकर समाज में समरूपता स्थापित करती है।

इतिहास गवाह है कि अस्पृश्यता बौद्धों व जैनों के शाकाहार को वरीयता देने एवं आखेटक जातियों को मांसाहार के कारण चाण्डाल मानने इत्यादि का परिणाम है, जिसने समाज को निरन्तर विश्रृंखलित किया है। वैदिक धर्म के उदात्त वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुयायी वाल्मीकि की रामायण में अस्पृश्यता के लिए कोई स्थान नहीं है उनके विचार में मानव के हृदय में मानव के प्रति सम्मान भाव जीवन की वास्तविक शान्ति का मूलमन्त्र है न कि वैभव, उच्च कुलीनता और शक्ति प्रदर्शन। निषादराज गुह के प्रति राम का अनन्य प्रेम मानवता का उत्तम उदाहरण है। विश्वबन्धुत्व का सुन्दरतम पाठ है, आज की जाति आधारित राजनीति व्यवस्था के लिए एक चुनौति है और जन संस्कृति की ज्योति को पुनः प्रदीप्त करने के लिए एक सार्थक प्रेरणा है। समदर्शी मनोवृत्ति वाले ऋषि वाल्मीकि स्वयं अदृश्य जाति में जन्म लेकर भी सीता रक्षण, लवकुश शिक्षण तथा रामायण लेखन आदि महत्वपूर्ण घटनाओं से राम जुड़े हैं। अतः विश्वास नहीं होता कि योगियों के हृदय में रमण करने वाले राम से वाल्मीकि तपश्वी शम्बूक का वध केवल इसलिए करा देंगे कि वह शूद्र है।

मानव मूल्यों की स्थापना, जीवन को उदात्त बनाने की कला और धर्म के प्रति अनुकूलता से अमृत रस का सन्निवेश–इन प्रा४जल गुणों के सम्मिश्रण से रामायण भारतीय सभ्यता का इतिहास बन गया है और प्रार४जक राम साक्षात् विग्रहवान धर्म। दम्भीरावण में इन गुणों का नितान्त अभाव था इसलिए तो वह अन्याय तथा अधर्म का प्रतीक था। किन्तु उसके प्रति व्यवहार में भी राम का समत्त्व निरन्तर द्योतित है। मृत्यु को प्राप्त रावण की ओर संकेत कर वे विभीषण से कहते हैं जैसा कि वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड में प्रतिपादित भी किया गया है–

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष तव।।[12]

महर्षि वाल्मीकि की कवि प्रतिभा ने रामकथा के पात्रों में मानव समाज, मानव व्यवहार, तथा मानव सद्गुणों की पराकाष्ठा का ऐसा

विलक्षण रंग भरा है कि रामायण के श्लोक वेद वाक्य बन कर धर्म प्राण जनता में लोकप्रिय हो गये हैं। वेद आदरणीय तो है लेकिन अनुकरणीय तो वही है जो रामायण में लिखा है–'रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादिवत्।' राम जिस मार्ग से गये हैं, वही मार्ग सन्मार्ग है, वही मार्ग लोक के लिए इष्ट है। उस मार्ग पर चलने वाले का दुःख सम्पूर्ण संसार का दुःख है, पशु–पक्षी भी उसके दुःख में सहायक है किन्तु विपरीत आचरण वाला अपनी तथा अपने कुल की अधोगति का कारण होता है। वस्तुतः कवि ने रामायण में देश के तीन भू–भागों– पूर्वोत्तर, पश्चिम और दक्षिण में बहुश्रुत तीन स्वतन्त्र आख्यानों को प्रक्षिप्त अंशों के साथ लेखनीबद्ध कर सम्पूर्ण भारत की संस्कृति एवं भौगोलिक एकरूपता को सूत्रबद्ध कर दिया है।

संक्षेपतः यही कहा जा सकता है कि वाल्मीकीय रामायण में विभिन्न संस्कृतियों में विरूपता होते हुए भी सामाजिक समरूपता का भाव पदे पदे परिलक्षित होता है। महर्षि वाल्मीकि की व्यावहारिक तथ्यों की अनुभूतिपरक विचारशैली सर्वथा सार्वभौमिक है और आचारनिष्ठा सर्वजनीन। उनका अमृतसङ्कल्प विश्वव्यापी है और आत्मभाव लोककल्याणक। ऋषि के अमृतानुभव की रसधार सर्वहितकारी है।

सन्दर्भ संकेत

1. कठोपनिषद् 3/9–12
2. श्रीमद्भगवद् गीता 4/13
3. श्रीमद्भगवद् गीता 3/13
4. ऋग्वेद 10/191/2
5. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 17/2
6. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 106/9
7. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 1/3
8. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 1/8
9. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड 68/9, 37
10. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड 62/6, 63/13
11. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 49/16–18
12. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड 109/25